''सामंतवाद एवं दलितों का दमन''

डॉ० प्रमोद कुमार

सामंतवाद एवं दलितों का दमन–सन् 1857 में अंग्रेजों ने भारत की सामंती शक्तियों पर पूर्णतः विजय हासिल करने के बाद भी सामंती रूप–रेखा को पूरी तरह नहीं मिटाया। बल्कि अंग्रेजों ने कुछ सामंती चरित्रों को रूपान्तरित रूप में बनाए रखा ताकि वे स्थानीय राजनीति को अपने काबू में रख सकें और शोषण की प्रक्रिया जारी रहे । साथ ही, भारतीय सामंत अंग्रेजी राज के प्रति वफादार भी रह सकें और यही हुआ भी। पूँजीवादी सभ्यता के उद्‌गम के अभाव में हमारा समाज सामंती पहचानों जैसे– जाति, नस्ल भाषा, धर्म, झूठी शान, दिखलावा आदि से ग्रसित रहा है। इस अर्द्धसामंती ढाँचे में अधिकांशतः सवर्ण हिन्दुओं का वर्चस्व था जो कि आपसी झगड़े निपटाने के लिए तो न्यायालय की शरण लेते थे; लेकिन गैर–सामंती वर्ग पर अंग्रेज़ी शासन के आतंक की बदौलत अपना दबदबा और शोषण की प्रक्रिया को कायम रखे हुए थे। लेकिन आजादी के बाद अंग्रेज़ी शासन का आतंक जाता रहा, साथ ही ज़मींदारी–प्रथा के उन्मूलन और आधे–अधूरे भूमि सुधार के कारण सामाजिक संरचना में कुछ परिवर्तन आया। सवर्ण सामंतों के दबदबे को कुछ झटका लगा। इनकी कुछ जमीन भी जातियों के सामंतों के हाथ लगी। ये लोग दखलदिहानी काश्तकार से अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार कर अर्द्धसामंत बन गए। चूँकि वोट की राजनीति में संख्या महत्त्वपूर्ण हो गयी, ये उच्च मध्य जाति के सामंत सत्ता अपनाने के करीब आ गए और इन्होंने ग़ैर–उच्च जाति के सामंत (मुसलमान सामंत सहित) को गोलबन्द किया। उत्तर भारत में वोट की राजनीति के तहत सत्ता की लड़ाई के अन्तर्गत परम्परावाद अथवा सवर्ण सामंतों और ग़ैर–उच्च जाति के सामंतों के बीच उठा–पटक चलती रही। चुनाव में मतदान केन्द्र लूटना, अन्य ग़ैरकानूनी हथकंडे अपनाना और हिंसात्मक प्रक्रिया इसी अर्द्धसामंती माहौल की परिचायक है।